

भारतीय संस्कृति – श्री अरविन्द के आलोक में

– न्यायमूर्ति रमेश चंद्र लाहोटी

पूर्व मुख्य न्यायाधीश, उच्चतम न्यायालय***

भारतीय संस्कृति क्या है? इसके संबंध में अनेक व्याख्याएं विविध दृष्टिकोण से की जा सकती हैं। किन्तु यहाँ श्री अरविन्द के दर्शन और उनके विचारों से संग्रहित कर भारतीय संस्कृति के चार लक्षणों की चर्चा करना चाहूंगा।

प्रथम, भारतीय संस्कृति आध्यात्म पर आधारित है और इसलिए शाश्वत है। भारतीय संस्कृति पर अनेक अधिक्रमण हुए, उसने बहुत आघात सहे, सैंकड़ों वर्षों के विदेशी शासन तथा सर्वदा भिन्न सांस्कृतिक मान्यताएं रखने वाली विचारधाराओं ने भारतीय संस्कृति को न केवल विकृत किया बल्कि उसे ध्वस्त करने की चेष्टा भी की। किन्तु वह अक्षुण्ण बनी रही। इकबाल ने लिखा है:

युनान—ओ—मिश्र—ओ—रोमां सब मिट गए जहां से
अब तक मगर है बाकी नामो—निशां हमारा।
कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी
सदियों रहा है दुश्मन दौरे—जहां हमारा।

श्री अरविन्द के अनुसार भारतीय आध्यात्म मन, मस्तिष्क, शरीर से परे, बल्कि जीवन से भी परे एक विशाल और परमसत्ता की अनुभूति है। वह मनुष्य के परे अनेक देवता, देवताओं के परे महादेवता और महादेवता से भी ऊपर एक परमसत्ता का दर्शन करती है। वह जीवन से परे, जीवन के अस्तित्व पर विश्वास करती है और सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि वह मानती है कि आध्यात्म के क्षेत्र में बड़ी से बड़ी उपलब्धि मनुष्य संसार में रहते हुए कर सकता है। मनुष्य देवत्व को प्राप्त हो सकता है और न केवल देवत्व बल्कि ईश्वरीय गुणों और क्षमता का अविर्भाव भी अपने व्यक्तित्व में समाविष्ट कर सकता है, यदि वह दृढ़ संकल्पित होकर अपना लक्ष्य निर्धारित करे और तदर्थ अपनी संपूर्ण क्षमता को समर्पित कर दे। जबकि पश्चिम का दर्शन मन, मस्तिष्क और शरीर को ही अपना लक्ष्य मानता है; भारतीय दर्शन मन, मस्तिष्क, शरीर और मनुष्य का जीवन इन्हें लक्ष्य नहीं मानता बल्कि एक महान लक्ष्य की प्राप्ति के लिए केवल साधन मानता है। ये साधन हैं, साध्य नहीं। और इन साधनों को भी विकसित कर और शक्ति संपन्न किया जा सकता है यदि हमारा लक्ष्य महान है।

द्वितीय, भारतीय संस्कृति सृजन में विश्वास रखती है और सृजन के लिए बहुमुखी होकर अनवरत प्रयत्नशील रहती है। भारत की संपूर्ण कलाओं और वैज्ञानिक उपलब्धियों का आधार सूत्र यह है कि मनुष्य का जीवन ऊर्जा का असीम और अजस्त्र श्रोत है। उसे पहचानने, विकसित करने और सुदुपयोग करने की आवश्यकता है। मानव मात्र को चाहिए कि इस शक्ति को निर्माण की ओर उन्मुख करे।

भारतीय संस्कृति का तीसरा गुण है कि उसमें निहित आध्यात्म की प्रसूति बुद्धिमत्ता और ज्ञान की पराकाष्ठा से होती है। भारतीय दर्शन को जो जिस दृष्टि से देखता है उसे वैसा ही लगता है। वह जितना सरल है उतना ही पेचीदा। जितना विषद् है उतना ही बारीक। जितना कठोर है उतना ही उदार। अनेक पश्चिमी सभ्यताओं में, पहिले एक एक धार्मिक विचारधारा का सूत्रपात हुआ और उसे आध्यात्मिक उत्कर्ष का साधन माना गया किन्तु भारतीय चिन्तन में आध्यात्मिक उत्कर्ष की आवश्यकता पहले अनुभव की गई उसके सिद्धांत, नियम और विधि रचे गए और तब उन्हें प्रामाणिक और बन्धनकारक बनाने के लिए धर्म का रूप दिया गया। इसलिए भारतभूमि आध्यात्म, धर्म और धर्मशास्त्रों की भूमि कहलाती है। हमारी आध्यात्मिक यात्रा आत्मा से परमात्मा की ओर प्रयाण करती है और जिस मार्ग से चलती है उस मार्ग को शास्त्रों का रूप दिया गया। हमारा धर्म कोई पाखंड या कर्मकांड नहीं है; वह उन विधि और नियमों का कोष है जिनसे 'सर्वजन हिताय, सर्वजन सुखाय' और 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के उच्च आदर्श प्राप्त किये जा सकते हैं।

चौथी और अंतिम बात यह है कि हमारी संस्कृति सनातन सत्य पर आधारित है और परमसत्य की प्राप्ति को अपना लक्ष्य मानती है। इसलिए सत्य से परमसत्य और सत्य की परमसत्ता से साक्षात्कार के लिए गतिशील रहती है।

इतना सब होते हुए भी आज ऐसा लगता है कि मानवता अपराजेय कठिनाइयों से घिर गई है। सर्वत्र हिंसा और विकृति व्याप्त है। असत्य, मर्यादाविहीन आचार और भ्रष्ट आचरण, ऐसा लगता है कि हमारे अस्तित्व के आधार को ही नष्ट करने पर तुले हैं। कभी-कभी लगता है कि पाशविकता मानवता पर हावी हो गई है और हम विनाश के गर्त की ओर अग्रसर हो रहे हैं। हाल में घटित घटनाएं इस बात की साक्षी हैं। सभ्य मानवता भय, चिन्ता और आशंकाओं से ग्रसित हो चुकी है। इसमें संदेह नहीं कि भौतिक समृद्धि और सुख के साधनों की खोज में हमने अपूर्व प्रगति की है। किन्तु क्या हम सुखी हो सके हैं ? सच तो यह है कि हमारी भौतिक उन्नति हमारी आध्यात्मिक उन्नति के मार्ग में बाधा बन कर खड़ी हो गई है। हमारी संस्कृति मानव जीवन को जिस लक्ष्य की प्राप्ति का साधन मानती है उससे हम भटक चुके हैं।

इस परिस्थिति और इस वातावरण में श्रीमां और श्री अरविन्द सर्वथा प्रासंगिक हैं।

श्री अरविन्द का दर्शन सकारात्मक है; उसमें निराशा और हताशा के लिए कोई स्थान नहीं है। श्री अरविन्द के अनुसार 'मनुष्य पृथ्वी पर अब तक हुए विकास का उच्चतम शिखर है'। किन्तु फिर भी मनुष्य पूरी तरह एक मानसिक सत्ता नहीं हुआ है। श्री अरविन्द के अनुसार मनुष्य अपनी मानसिक क्षमता पर शासन करने वाला सच्चा स्वामी नहीं बन सका है इसलिए वह अपने अंदर की ही पाशविकता अथवा जड़त्व का दास हो जाता है और तब मनुष्य अपनी मानसिक भव्यता के बावजूद भी एक खतरनाक प्राणी बन जाता है। यह प्रकृति का एक विचित्र प्रयोग है कि श्रीमां और श्री अरविन्द ने पार्थिव शरीर धारण कर जिस शक्ति को वातावरण में प्रतिष्ठापित कर दिया है उससे एक सत्य चेतना जाग्रत होगी जो अज्ञान के अंधकार और असत्य के मोहपाश का विध्वंस करेगी। और जब यह सत्य चेतना सशक्त होकर मानव चेतना का अंश बन चुकी होगी तब जो भी उस सत्य चेतना की अवज्ञा या विरोध करेगा उसे वह नष्ट कर देगी। इसके लिए आवश्यक है कि मानव मात्र 'अपनी अज्ञानमय मानव चेतना को दूर फेंककर अति-मानवीय आध्यात्मिक सत्ताओं में विकसित हो'। इसके लिए चिन्तित होने की आवश्यकता नहीं है, दृढ़ निश्चय और कठिन तप-तुल्य-संघर्ष करने की आवश्यकता है। एक सच्चा प्रयत्न और एक सचेतन तैयारी। श्री अरविन्द कहते

हैं कि विशुद्धीकरण के लिए मानवता को फिर से एक बच्चे की तरह उस आधारभूत प्राचीन आध्यात्मिक अनुशासन के तरीकों को सीखना होगा जो भारतीय संस्कृति में निहित हैं। जैसे झूठ मत बोलो, चोरी मत करो, निन्दा करने की प्रवृत्ति का परित्याग करो, लड़ो मत, प्रेम करो आदि आदि। मनुष्य मात्र को अपनी चित्तशुद्धि करनी होगी जिससे चेतना की शुद्धि निष्पादित होगी। जिसका क्रम होगा – आत्मशुद्धि, शरीर की शुद्धि, प्राण की शुद्धि और तदन्तर चेतना के संपूर्ण आधार की शुद्धि। और तब प्राप्त होगी वह आध्यात्मिकता जो व्यवहारिक जीवन में सफल और सार्थक सिद्ध होती है और अन्ततोगत्वा उस परमसत्ता से साक्षात्कार करने के लिए तत्पर कर देती है जिस परमसत्ता के अंश सभी प्राणी हैं हम सभी हैं।

एक विद्वान संत से प्रश्न – कलयुग बत्तीस लाख वर्ष का – अभी केवल पाँच हजार वर्ष बीते हैं – एक युग में भी अनेक चक्र।

श्री अरविन्द का दर्शन, श्री अरविन्द का धर्म, श्री अरविन्द का आध्यात्म – यह सब एक नवीन सृष्टि निर्मित करने के लिए हैं। 'स्वर्ण हंस' में प्रकाशित 'मानवता का भविष्य – क्या करना होगा' शीर्षक के लेख में नलिनी दा द्वारा 1982 में बंगला में दी गई एक वार्ता का अनुवाद प्रकाशित हुआ है। उसका एक अंश सशक्त अभिव्यक्ति है उसमें कहा है "वैयक्तिक अन्तरात्मा का भविष्य श्रीमां और श्री अरविन्द की बाहों में है। सृष्टि का भविष्य एक नवीन उषा है; वह तैयार है पार्थिव में प्रकट होने के लिए। निश्चय पूर्वक तैयार है, वह प्रतीक्षा कर रही है उसका अविर्भाव अनिवार्य है कोई शक्ति उसे रोक नहीं सकती। वह नवीन सृष्टि सूक्ष्म भौतिक लोक में, पृथ्वी के रंगमंच के साफ होने की प्रतीक्षा कर रही है। ऋग्वेद की एक ऋचा कहती है – 'ओह, ज्योतियों की परमज्याति आ गई है'। यह ऋचा प्रमाणित होकर रहेगी। और परमज्योति के उस क्षण के आह्वान का गान गाने के लिए कोई न कोई मानव ही होगा। असंभव कुछ नहीं"।

श्री अरविन्द के अनुसार संपूर्ण विश्व भारत की ओर बड़ी आशापूर्ण नज़रों से देख रहा है। सारे विश्व को प्रतीक्षा है किसी बाढ़ या तुफान के तुल्य एक ऐसे आध्यात्मिक प्रवाह की जो स्वयं में संपूर्ण होगा। इससे बड़ी कोई विडम्बना या दुर्भाग्य हो नहीं सकता कि भारतवर्ष अपनी उस आध्यात्मिक विरासत का ऐसे क्षण में परित्याग कर दे जबकि सारा विश्व आध्यात्मिक गुरुता और मुक्तिदायी प्रकाश की प्राप्ति के लिए भारत की ओर मुड़ रहा है।

एक भारतवासी के रूप में हम जिस अवसाद से ग्रस्त हैं उसे एक शायर दो पंक्तियों में यूँ कहता है—

उभरने ही नहीं देती हमें बेमायगी (हताशा) दिल की,
वरना कौन ज़र्रा (बूंद) है जो दरया (समन्दर) हो नहीं सकता।

आइए, इस सम्मेलन के माध्यम से हम सब उस मानव की खोज करें अथवा हम ही वह मानव बनने की चेष्टा करें जो असत से सत की ओर, तम से प्रकाश की ओर तथा मृत्यु से अमृत की ओर यात्रा का शुभारंभ करने में आज की पीड़ित मानवता का नेतृत्व कर मार्गदर्शन दे सकता है।

***06—12—2008 को नोएडा में हिन्दी क्षेत्रिय समीति के सातवें वार्षिक अधिवेशन में दिए गए वक्तव्य पर आधारित